

## सम्पादकीय

### प्रवचनसार परिशिष्ट : एक अनुशीलन

विकल्पनय और अविकल्पनय के विवेचन के उपरान्त अब चार निक्षेप संबंधी नयों की चर्चा करते हैं ह

#### (१२-१५) नामनय, स्थापनानय, द्रव्यनय और भावनय

नामनयेन तदात्मवत् शब्दब्रह्मामर्शि ॥१२॥ स्थापनानयेन मूर्तित्व-वत्सकलपुद्गलालम्बि ॥१३॥ द्रव्यनयेन माणवकश्रेष्ठिश्रमणपार्थिव-वदनागतातीतपर्यायोद्भासि ॥१४॥ भावनयेन पुरुषायितप्रवृत्तयोषिट्त्व-दात्वपर्यायोल्लासि ॥१५॥

“आत्मद्रव्य नामनय से नामवाले की भाँति शब्दब्रह्म को स्पर्श करनेवाला है, स्थापनानय से मूर्तिपने की भाँति सर्व पुद्गलों का अवलम्बन करनेवाला है, द्रव्यनय से बालक सेठ और श्रमण राजा की भाँति अनागत और अतीत पर्याय से प्रतिभासित होता है और भावनय से पुरुष के समान प्रवर्तमान स्त्री की भाँति वर्तमान पर्यायरूप से उल्लसित-प्रकाशित-प्रतिभासित होता है।”

उक्त चार नय निक्षेपों सम्बन्धी नय हैं। भगवान आत्मा में नाम, स्थापना, द्रव्य एवं भाव नामक चार धर्म हैं, जिन्हें उक्त चार नय क्रमशः अपना विषय बनाते हैं। जगत में जितने भी पदार्थ हैं, वे सभी किसी न किसी नाम से जाने जाते हैं। बिना नाम का कोई भी पदार्थ जगत में नहीं है। आत्मा भी एक पदार्थ है; अतः वह भी ‘आत्मा’ - इस नाम से जाना जाता है। यदि आत्मा में नाम नामक धर्म नहीं होता तो फिर उसका प्रतिपादन संभव नहीं था।

जिसप्रकार आत्मा में एक ऐसा धर्म है, जिसके कारण आत्मा किसी नाम द्वारा जाना जाता है; उसीप्रकार एक ऐसा भी धर्म है, जिसके कारण आत्मा स्थापना द्वारा भी जाना जा सकता है। आत्मा की स्थापना किसी न किसी पुद्गल में की जाती है; अतः यहाँ कहा गया है कि आत्मद्रव्य स्थापनानय से मूर्तिपने की भाँति सर्व पुद्गलों का अवलम्बन करनेवाला है।

जिसप्रकार मूर्ति में भगवान की स्थापना की जाती है, उसीप्रकार किसी भी पुद्गलपिण्ड में आत्मा की भी स्थापना की जा सकती है। जिस वस्तु में जिस व्यक्ति की स्थापना की जाती है, उस वस्तु के देखने पर वह व्यक्ति खयाल में आता है - इसप्रकार वह वस्तु स्थापना के द्वारा उस व्यक्ति का ज्ञान करानेवाली हुई।

यह स्थापना तदाकार भी हो सकती है और अतदाकार भी। तदाकार स्थापना में इस बात का ध्यान रखा जाता है कि जिस व्यक्ति की स्थापना जिन पुद्गलपिण्डों में की जा रही है, वे पुद्गलपिण्ड उसी व्यक्ति के आकार में होने चाहिए। जैसे कि गाँधीजी की स्थापना गाँधी के चित्र में या गाँधीजी की तदाकार प्रतिमा में करना। अतदाकार स्थापना में इसकी आवश्यकता नहीं होती, हम किसी भी आकार की वस्तु में किसी की भी स्थापना कर सकते हैं। जैसे कि बिना हाथी-घोड़े के आकार की शतरंज की गोटों में हाथी-घोड़ों की कल्पना करना।

नाम और स्थापना के समान आत्मा में एक द्रव्य नामक धर्म भी है, जिसके कारण आत्मा अपनी भूतकालीन एवं भविष्यकालीन पर्यायोंरूप दिखाई देता है। जिसप्रकार सेठ का बालक भविष्य का सेठ ही है; अतः उसे वर्तमान में भी सेठजी कह दिया जाता है अथवा जो राजा मुनि हो गया है, उसे मुनि-अवस्था में भी राजा कहा जाता है। - ये सब द्रव्यनय के ही कथन हैं।

इसप्रकार के कथन लोक में ही नहीं, जिनागम में भी सर्वत्र दृष्टिगोचर होते हैं। क्या आगम में यह लिखा नहीं मिलता है कि भरत चक्रवर्ती मोक्ष गये ? वस्तुतः बात तो यह है कि कोई भी व्यक्ति चक्रवर्ती पद पर रहते हुए मोक्ष नहीं जा सकता है। भरत ने जब चक्रवर्ती पद त्यागकर मुनिदीक्षा ली, तब वे मोक्ष गये। मोक्ष तो भरत मुनि गये, किन्तु भूतपर्याय का वर्तमानपर्याय में आरोप करके यही कहा जाता है कि भरत चक्रवर्ती मोक्ष गये। इसीप्रकार

आदिनाथ से लेकर महावीर तक सभी तीर्थंकर वर्तमान में तो सिद्धदशा में हैं; तथापि उन्हें हम आज भी तीर्थंकर ही कहते हैं। भगवान का जन्म कहना भी इसी नय का कथन है, क्योंकि जिस जीव का अभी जन्म हुआ है, वह अभी तो बालक ही है, पर भविष्य में भगवान बननेवाला है; अतः उसे अभी भी 'भगवान' कहने का व्यवहार लोक में प्रचलित है।

भगवान आत्मा में द्रव्यधर्म नामक एक ऐसा धर्म है, जिसके कारण आत्मा भूतकालीन और भविष्यकालीन अर्थात् नष्ट और अनुत्पन्न पर्यायरूप कहा जाता है। उस द्रव्य नामक धर्म को विषय बनानेवाले नय का नाम द्रव्यनय है।

सैतालीस नयों में पहले नय का नाम भी द्रव्यनय है और इस चौदहवें नय का नाम भी द्रव्यनय है। नाम एक से होने पर भी इन दोनों नयों के स्वरूप में अन्तर है। प्रथम द्रव्यनय के साथ पर्यायनय आया है और इस द्रव्यनय के साथ भावनय आया है। वहाँ द्रव्यनय और पर्यायनय - ऐसा जोड़ा है और यहाँ द्रव्यनय और भावनय - ऐसा जोड़ा है। प्रथम द्रव्यनय का विषय सामान्य चैतन्यमात्र द्रव्य है और इस द्रव्यनय का विषय भूत-भावी पर्यायवाला द्रव्य है।

जिसप्रकार द्रव्यनय से भगवान आत्मा भूत और भविष्यकालीन पर्याय के रूप में जाना जाता है; उसीप्रकार भावनय से वह वर्तमान-पर्यायरूप से जाना जाता है। इस बात को आचार्यदेव पुरुष के समान प्रवर्तमान स्त्री का उदाहरण देकर समझाते हैं।

जिसप्रकार पुरुष के भेष में रहकर पुरुष के समान व्यवहार करनेवाली स्त्री पुरुष जैसी ही प्रतीत होती है; उसीप्रकार यह भगवान आत्मा भी वर्तमान में प्रवर्तित होने से वर्तमान पर्यायरूप ही प्रतिभासित होता है। सम्यग्दर्शन से युक्त आत्मा सम्यग्दृष्टी कहा जाता है, जाना भी जाता है। सम्यग्दर्शन से युक्त जीव को जीव न कहकर सम्यग्दृष्टी कहना या जानना ही भावनय है।

भगवान आत्मा में एक ऐसा धर्म है, जिसके कारण यह आत्मा वर्तमान

पर्यायरूप से जाना जाता है, कहा जाता है। उस धर्म का नाम है भावधर्म और उसे जाननेवाले श्रुतज्ञान के अंश का नाम है भावनय।

आत्मद्रव्य के भूत और भावी पर्यायों से युक्त जानना द्रव्यनय है और वर्तमान पर्याय से युक्त जानना भावनय है। जिसप्रकार पूजन करते हुए मुनीम को पुजारी भी कहा जा सकता है और मुनीम भी, भावनय से वह पुजारी है और द्रव्यनय से मुनीम। वर्तमान में पूजन करनेरूप पर्याय से युक्त होने से उसे पुजारी कहना उपयुक्त ही है; तथापि भूत और भावी पर्यायों की युक्तता से विचार करने पर वह मुनीम ही प्रतीत होता है; क्योंकि पूजन के पहले वह मुनीमी ही करता रहा है और बाद में भी मुनीमी ही करनेवाला है।

जो व्यक्ति उसके सम्पूर्ण जीवन से एकदम अपरिचित है, वह उसे पूजा करते देखकर यही कहेगा कि पुजारीजी ! क्या मैं भी आपके साथ पूजन कर सकता हूँ; किन्तु जो उसे व उसके सम्पूर्ण जीवन को जानता है, वह यही कहेगा कि मुनीमजी ! क्या मैं भी आपके साथ पूजन कर सकता हूँ; इसीप्रकार पूजन करते हुए राजा को प्रयोजनवश पुजारी और राजा दोनों ही कहा जा सकता है। पूजन कराते हुए प्रतिष्ठाचार्य भी यह कहते हुए सुने जाते हैं कि सभी पुजारी हाथ में अर्घ ले लें, साथ में उन्हीं पुजारियों में से किसी से यह भी कहते देखा जा सकता है कि सेठजी ! आपने अर्घ क्यों नहीं लिया ?

भूतकालीन एवं भविष्यकालीन तीर्थकरों की मूर्तिप्रतिष्ठा स्थापना-नय के साथ-साथ द्रव्यनय का विषय भी है; क्योंकि स्थापनानय तो मात्र पौद्गलिकमूर्ति में चेतन परमात्मा की प्रतिष्ठा को विषय बनायेगा, पर यहाँ तो जिन तीर्थकर आत्माओं की जिस अरहंतपर्याय की स्थापना मूर्ति में की जा रही है, वे आत्मा वर्तमान में उस पर्यायरूप से परिणमित नहीं हो रहे हैं, उनमें से भूतकालीन तीर्थकर तो वर्तमान में सिद्धपर्यायरूप से परिणमित हो रहे हैं और भावी तीर्थकर अभी देवादि किसी पर्याय में होंगे। अतः आत्मा को भूतकालीन और भविष्यकालीन पर्यायों के रूप में देखनेवाला द्रव्यनय के बिना भूतकालीन

और भविष्यकालीन तीर्थकरों की प्रतिष्ठा का व्यवहार संभव नहीं है। इस दृष्टि से देखने पर जिन्हें हम वर्तमान चौबीसी कहते हैं, वे ऋषभादि तीर्थकर भी भूतकालीन ही हैं; क्योंकि वे वर्तमान में सिद्धदशा में ही हैं। वर्तमानदशारूप परिणमित तो सीमन्धरादि विद्यमान बीस तीर्थकर ही हैं; क्योंकि वे ही अभी अरहंत-अवस्था में विद्यमान हैं।

अतः सीमन्धरादि तीर्थकर अरहंतों की प्रतिष्ठा स्थापनानय एवं द्रव्यनय के आश्रित है। नामनय का उपयोग तो अनिवार्य है ही; क्योंकि इसके बिना तो यह कहना ही संभव नहीं कि यह प्रतिमा अमुक तीर्थकर की है।

इसप्रकार मूर्तिप्रतिष्ठा का समस्त व्यवहार नाम, स्थापना, द्रव्य एवं भावनयों के आधार पर प्रचलित व्यवहार है। यही कारण है कि निक्षेप की परिभाषा इसप्रकार दी गई है कि नयों के द्वारा प्रचलित लोक व्यवहार को निक्षेप कहते हैं। इसप्रकार का लोकव्यवहार मात्र जिनेन्द्र- प्रतिष्ठाओं में ही नहीं, अपितु लोक के अन्य व्यवहारों में भी प्रचलित है। चित्रकला, मूर्तिमाला आदि अनेक चीजों का आधार यही नय है।

इसप्रकार नामधर्म, स्थापनाधर्म, द्रव्यधर्म और भावधर्म - आत्मा के ये चार धर्म ज्ञेय हैं और इनके आधार पर आत्मा को जाननेवाले श्रुतज्ञान के अंशरूप नामनय, स्थापनानय, द्रव्यनय और भावनय - ये चार नय ज्ञान हैं और इनके आधार पर प्रचलित लोकव्यवहार रूप चार निक्षेप हैं ॥१२-१५॥

चार निक्षेप संबंधी नयों की चर्चा के उपरान्त अब सामान्यनय और विशेषनय की चर्चा करते हैं

### (१६-१७) सामान्यनय और विशेषनय

सामान्यनयेन हारस्रग्दामसूत्रवद्व्यापि ॥१६॥ विशेषनयेन तदेक-मुक्ताफलवद्व्यापि ॥१७॥

“आत्मद्रव्य सामान्यनय से हार-माला-कंठी के डोरे की भाँति व्यापक है और विशेषनय से उसके एक मोती की भाँति अव्यापक है ॥१६-१७॥”

जिसप्रकार हार या माला के प्रत्येक पुष्प में अथवा कंठी के प्रत्येक मोती में डोरा व्याप्त रहता है; उसीप्रकार भगवान आत्मा अपने सम्पूर्ण गुण व पर्यायों में व्याप्त रहता है। तथा जिसप्रकार उसी कंठी या हार का एक मोती अन्य मोतियों में अथवा सम्पूर्ण कंठी या हार में व्याप्त नहीं रहता; उसीप्रकार भगवान आत्मा की एक पर्याय अन्य पर्यायों में अथवा सम्पूर्ण आत्मद्रव्य में व्याप्त नहीं रहती।

भगवान आत्मा में एक सामान्य नामक धर्म है, जिसके कारण वह भगवान आत्मा अपने प्रत्येक गुण व अपनी प्रत्येक पर्याय में व्याप्त रहता है। आत्मा के इस सामान्यधर्म को जानने या कहनेवाले नय को सामान्यनय कहते हैं। इसीप्रकार भगवान आत्मा में एक विशेष नामक धर्म है, जिसके कारण भगवान आत्मा की एक पर्याय अन्य पर्यायों में अथवा सम्पूर्ण आत्मा में व्याप्त नहीं होती। आत्मा के इस विशेषधर्म को जानने या कहनेवाले नय को विशेषनय कहते हैं।

आत्मद्रव्य में स्वभावगत ही ऐसी विशेषता है कि वह अपने सम्पूर्ण गुणपर्यायों में व्याप्त रहता है, इसकारण उसे व्यापक कहा जाता है तथा एक ऐसी भी विशेषता है कि उसकी एक पर्याय सम्पूर्ण द्रव्य में नहीं व्यापती, अन्य पर्यायों में भी नहीं व्यापती, इसकारण उसे अव्यापक भी कहा जाता है। इसी बात को नयों की भाषा में इसप्रकार व्यक्त करते हैं कि आत्मा सामान्यनय से व्यापक है और विशेषनय से अव्यापक है।

‘आत्मा व्यापक है’ - इसका अर्थ लोक में ऐसा भी लिया जाता है कि वह सम्पूर्ण लोक में व्याप्त है, पर यहाँ ऐसी बात नहीं है। यहाँ तो यह कहा जा रहा है कि भगवान आत्मा अपने चैतन्यलोक में व्याप्त है, अपने सम्पूर्ण गुणों और पर्यायों में व्याप्त है, फैला हुआ है, पसरा हुआ है। भगवान आत्मा का परपदार्थों में व्याप्त होने का तो कोई प्रश्न ही नहीं है।

प्रवचनसार की 23 वीं गाथा में जो आत्मा को सर्वगत कहा गया है, उसका अर्थ तो मात्र इतना है कि वह सम्पूर्ण लोकालोक को जानने के

स्वभाववाला है। उसमें साफ-साफ लिखा है कि आत्मा ज्ञानप्रमाण है, ज्ञान ज्ञेयप्रमाण है और ज्ञेय सम्पूर्ण लोकालोक है; इसलिए आत्मा सर्वगत है। वहाँ तो मात्र सबको जानने की बात है और यहाँ आत्मा अपने सामान्य स्वभाव के कारण अपने गुणों व पर्यायों में पूर्णतः व्याप्त है - यह कहा जा रहा है। प्रवचनसार की 23 वीं गाथा संबंधी बात सर्वगतनय और असर्वगतनय के प्रकरण में यथास्थान की जावेगी; यहाँ तो सामान्य और विशेष - इन दोनों नयों के माध्यम से मात्र इतना कहा जा रहा है कि आत्मा अपनी सम्पूर्ण पर्यायों में तो व्याप्त है, पर उसकी प्रत्येकपर्याय आत्मा में त्रिकाल व्याप्त नहीं है; क्योंकि उसकी एक पर्याय दूसरी पर्याय में व्याप्त नहीं है।

प्रश्न - भावनय और द्रव्यनय के प्रकरण में भी तो कुछ इसीप्रकार कहा था ? उनमें और इसमें क्या अन्तर है ?

उत्तर - यह भगवान आत्मा भावनय से वर्तमानपर्यायरूप प्रतिभासित होता है, द्रव्यनय से भूत-भावीपर्यायरूप से प्रतिभासित होता है और इस सामान्यनय से भूत, वर्तमान और भविष्य - इन तीनों काल की पर्यायों में व्याप्त प्रतिभासित होता है।

सामान्यनय से अर्थात् द्रव्य-अपेक्षा आत्मा सर्व पर्यायों में व्याप्त है, पर विशेषनय से अर्थात् पर्याय-अपेक्षा आत्मा सर्व पर्यायों में व्याप्त नहीं है; इसलिए यह कहा जाता है कि आत्मा सामान्यनय से व्यापक है और विशेषनय से अव्यापक है।

वस्तुतः बात यह है कि द्रव्य और पर्याय में व्यापक-व्याप्य सम्बन्ध होता है। द्रव्य व्यापक है और पर्याय व्याप्य है। पर्याय व्याप्य है - इसका अर्थ यह हुआ कि वह व्यापक नहीं है। ‘व्यापक नहीं है’ को ही ‘अव्यापक है’ - इसप्रकार कहा जाता है। इसप्रकार यह निश्चित हुआ कि द्रव्य-अपेक्षा व्यापक है और पर्याय-अपेक्षा अव्यापक है।

इसी को नयों की भाषा में इसप्रकार कहते हैं कि सामान्यनय से आत्मा व्यापक है और विशेषनय से अव्यापक है ॥16-17 ॥

सामान्यनय और विशेषनय की चर्चा के उपरान्त अब नित्यनय और अनित्यनय की चर्चा करते हैं ह

### (१८-१९) नित्यनय और अनित्यनय

नित्यनयेन नटवदवस्थाधि ॥१८॥ अनित्यनयेन रामरावणवदन-  
वस्थाधि ॥१९॥

“आत्मद्रव्य नित्यनय से नट की भाँति अवस्थायी है और अनित्यनय से राम-रावण की भाँति अनवस्थायी है ॥18-19॥”

जिसप्रकार राम-रावण आदि के नित बदलते भिन्न-भिन्न अनेक स्वाँग रखने पर भी नट राम-रावण नहीं हो जाता, नट ही रहता है। वह स्वाँग चाहे जो भी रखे, पर उसका नटपना कायम रहता है। उसी प्रकार यह भगवान आत्मा नर-नारकादि पर्यायों को बदल-बदल कर धारण करता हुआ भी आत्मा ही रहता है। ऐसा ही आत्मा का स्वभाव है। आत्मा के इस स्वभाव का नाम ही नित्यधर्म है। इस धर्म को जाननेवाले या कहनेवाले नय का नाम नित्यनय है। इसी बात को इसतरह भी कह सकते हैं कि आत्मा नित्यनय से अवस्थायी (नहीं बदलने वाला) है। जिसप्रकार आत्मा में एक नित्य नामक धर्म है; उसीप्रकार एक अनित्य नामक धर्म भी है, जिसके कारण आत्मा नित्य स्थायी रहकर भी निरन्तर बदलता रहता है। इस अनित्य नामक धर्म को जानने या कहनेवाले नय का नाम अनित्यनय है। इसी बात को इसप्रकार भी कह सकते हैं कि आत्मा अनित्यनय से अनवस्थायी (नित बदलने वाला) है। जिसप्रकार नट नित्य एक नटरूप रहकर भी राम-रावणादि के स्वाँगरूप होता रहता है; उसीप्रकार भगवान आत्मा भी नित्य एक आत्मरूप रहकर भी मनुष्यादि पर्यायों को धारण करता हुआ नित बदलता ही रहता है; अतः अनवस्थायी है, अनित्य है।

तात्पर्य यह है कि भगवान आत्मा नित्यनय से प्रतिसमय अवस्थायी

(नित्य) है और अनित्यनय से प्रतिसमय अनवस्थायी (अनित्य) है। इसप्रकार भगवान आत्मा नित्य (अवस्थायी) भी है और अनित्य (अनवस्थायी) भी है।

अनन्तधर्मात्मक भगवान आत्मा के अनन्तधर्मों में परस्पर विरुद्ध प्रतीत होनेवाले नित्य और अनित्य धर्म आत्मा में एकसाथ ही रहते हैं; इसकारण यह भगवान नित्य बदलकर भी कभी नहीं बदलता है और नहीं बदलकर भी नित्य बदलता रहता है।

सीधी-सी बात यह है कि जिसप्रकार राम-रावण के स्वाँग नट के नटपने के विरोधी नहीं, निषेधक नहीं हैं तथा नट का नटपना राम-रावण स्वाँगों का विरोधी नहीं है; क्योंकि वे एकसाथ रह सकते हैं।

जैसे :- नट, राम और नट तो एकसाथ रह सकता है, पर वह राम और रावणरूप एकसाथ नहीं रह सकता है। जब वह राम का वेष धारण करेगा, तब रावण का वेष नहीं धर सकता है और जब रावण का का वेष धारण करेगा, तब राम का नहीं धर सकता है।

अतः स्वाँग तो परस्पर विरोधी हैं, पर नट और स्वाँग परस्पर विरोधी नहीं हैं। भले ही विरोधी दिखते हों, पर विरोधी हैं नहीं; क्योंकि एक ही काल में यदि हम उसे स्वाँग की अपेक्षा देखेंगे तो राम दिखेगा और स्वाँगधर्ता की अपेक्षा देखेंगे तो नट दिखेगा।

रमेश नामक नट राम का पाठ कर रहा हो, उस समय कोई प्रश्न करे कि ‘यह कौन है?’ तो इसके एक साथ दो उत्तर दिये जा सकते हैं; कोई कहे राम और कोई कहे रमेश। दोनों में से एक भी उत्तर गलत नहीं है; क्योंकि वह राम और रमेश एकसाथ है। इसीप्रकार आत्मा में रहनेवाले नित्य और अनित्य धर्म भले ही विरोधी प्रतीत होते हों, पर वे परस्पर विरोधी नहीं हैं; क्योंकि वे दोनों एकसाथ एक आत्मा में रहते हैं।

यह भगवान आत्मा द्रव्यपर्यायात्मक वस्तु है; अतः द्रव्यदृष्टि से नित्य है और पर्यायदृष्टि से अनित्य है। ऐसा नित्य-अनित्य होनेरूप इसका



स्वभाव ही है। स्थायीरूप रहने के स्वभाव को नित्यधर्म कहते हैं और बदलते रहनेरूप स्वभाव को अनित्यधर्म कहते हैं।

इन नित्य-अनित्य धर्मों को जाननेवाले ज्ञान को या कहनेवाले वचनों को क्रमशः नित्यनय और अनित्यनय कहा जाता है ॥18-19।

नित्यनय और अनित्यनय की चर्चा के उपरान्त अब यहाँ सर्वगत और असर्वगतनय की चर्चा आरंभ करते हैं

### (२०-२१) सर्वगतनय और असर्वगतनय

सर्वगतनयेनविस्फारिताक्षचक्षुर्वत्सर्ववर्ति ॥२०॥ असर्वगतनयेन मीलिताक्षचक्षुर्वदात्मवर्ति ॥२१॥

“आत्मद्रव्य सर्वगतनय से खुली हुई आँख की भाँति सर्ववर्ती (सब में व्याप्त होनेवाला) है और असर्वगतनय से मीची हुई (बंद) आँख की भाँति (आत्मवर्ती) अपने में रहनेवाला है ॥20-21 ॥”

जिसप्रकार सब में घूमने-फिरनेवाली होने से खुली आँख को सर्वगत कहा जाता है; उसीप्रकार सबको देखने-जानने के स्वभाववाला होने से भगवान आत्मा को सर्वगत कहा जाता है।

जिसप्रकार बन्द आँख अपने में ही रहती है; उसीप्रकार सबको देखने-जानने के स्वभाववाला होने पर भी, सबको देखते-जानते हुए भी, भगवान आत्मा अपने असंख्य प्रदेशों के बाहर नहीं जाता, अपने में ही रहता है; अतः असर्वगत है, आत्मगत है।

इसप्रकार सर्वगतनय से आत्मा सर्वगत है और असर्वगतनय से आत्मगत है, असर्वगत है। इन सर्वगत और असर्वगत नयों के माध्यम से यह बताया जा रहा है कि भगवान आत्मा में एक ऐसा धर्म है, जिसके कारण यह भगवान आत्मा अपने असंख्य प्रदेशों में रहकर भी, अपने असंख्य प्रदेशों के बाहर नहीं जाकर भी लोकालोक को जानता है, देखता है, जान सकता है, देख सकता है। आत्मा का ऐसा ही स्वभाव है। आत्मा के इस स्वभाव का नाम ही सर्वगतधर्म है।

भले ही यह भगवान आत्मा सबको जाने, पर इसे पर को जानने के लिए अपने आत्मप्रदेशों को छोड़कर पर में जाने की आवश्यकता नहीं है; अपने आत्मप्रदेशों में रहकर ही यह पर को जानने की सामर्थ्यवाला है। चूँकि यह अपने आत्मप्रदेशों के बाहर नहीं जाता है; अतः यह आत्मगत ही है। इस आत्मगतपने को ही असर्वगत भी कहते हैं।

इसप्रकार भगवान आत्मा में एक सर्वगत नामक धर्म है और एक असर्वगत नामक धर्म है। आत्मा के सर्वगतधर्म को अथवा सर्वगतधर्म की ओर से आत्मा को देखनेवाले नय को सर्वगतनय और असर्वगतधर्म को या असर्वगतधर्म की ओर से आत्मा को देखनेवाले नय को असर्वगतनय कहते हैं।

इसी बात को इसप्रकार भी कहा जा सकता है कि आत्मा सर्वगतनय से सर्ववर्ती है, सबमें व्याप्त रहनेवाला है और असर्वगतनय से आत्मा आत्मवर्ती है, अपने में ही रहनेवाला है, अपने में ही व्याप्त है, सबमें नहीं।

**प्रश्न** – जिसप्रकार खुली आँख देखती है और बन्द आँख नहीं देखती; उसीप्रकार सर्वगतनय से आत्मा सबको देखता-जानता है और असर्वगतनय से सबको देखता-जानता नहीं है – ऐसा सीधा-सा अर्थ क्यों नहीं लेते ?

**उत्तर** – इन दोनों नयों के माध्यम से आचार्यदेव पर को जानने और नहीं जानने की बात नहीं बताना चाहते हैं; अपितु आत्मा के स्वभाव की इस विशेषता को स्पष्ट करना चाहते हैं कि वह अपने आत्मप्रदेशों में स्थित रहकर भी लोकालोक के सम्पूर्ण पदार्थों को जान सकता है, देख सकता है। सम्पूर्ण लोक को देखने-जानने के लिए उसे सम्पूर्ण लोक में जाने की आवश्यकता नहीं है। तात्पर्य यह है कि यह भगवान आत्मा अपने में ही सीमित रहकर भी सम्पूर्ण लोक को देख-जान सकता है और सम्पूर्ण लोक को देख-जानकर भी आत्मप्रदेशों से बाहर नहीं जाता। भगवान आत्मा का ऐसा ही स्वभाव है। आत्मा के इस स्वभाव का प्रतिपादन ही दोनों नयों का मूल प्रयोजन है।

अतः यहाँ उदाहरण में जो खुली आँख और बन्द आँख की बात कही है, उसका अर्थ आचार्यदेव को मात्र इतना ही अभीष्ट है कि खुली आँख चारों ओर घूमती है और बन्द आँख अपने में ही रहती है। आँख जानती है और नहीं जानती है - यह बात यहाँ है ही नहीं ॥20-21॥

सर्वगतनय और असर्वगतनय की चर्चा के उपरान्त अब शून्यनय और अशून्यनय की चर्चा करते हैं ह

### (२२-२३) शून्यनय और अशून्यनय

शून्यनयेन शून्यागारवत्केवलोद्भासि ॥२२॥ अशून्यनयेन लोका-  
क्रांतनौवन्मिलितोद्भासि ॥२३॥

“आत्मद्रव्य शून्यनय से शून्य (खाली) घर की भाँति एकाकी (अकेला-  
अमिलित) भासित होता है और अशून्यनय से लोगों से भरे हुए जहाज की  
भाँति मिलित भासित होता है ॥22-23 ॥”

अनन्तधर्मात्मक भगवान आत्मा के ज्ञानस्वभाव में अनन्त ज्ञेय (पदार्थ)  
प्रतिबिम्बित होते हैं; तथापि कोई भी ज्ञेय (पदार्थ) भगवान आत्मा में मिल  
नहीं जाता। तात्पर्य यह है कि अनन्त पदार्थों को जानकर भी यह भगवान  
आत्मा सूने घर की भाँति उनसे खाली ही रहता है। इस भगवान आत्मा का  
ऐसा ही स्वभाव है कि अनन्त पदार्थों को जानकर भी वह उनसे अमिलित  
रहता है, अलिप्त रहता है, शून्य रहता है।

भगवान आत्मा के इस अलिप्तस्वभाव को, अमिलितस्वभाव को,  
शून्यस्वभाव को ही शून्यधर्म कहते हैं और इस शून्यधर्म को विषय  
बनानेवाले सम्यग्ज्ञान के अंश को शून्यनय कहते हैं।

यद्यपि यह सत्य है कि कोई भी पदार्थ भगवान आत्मा में मिलता नहीं है;  
तथापि यह भगवान आत्मा उन्हें जानता अवश्य है।

यदि इस जानने को ही मिलना कहें तो यह भी कह सकते हैं कि यह  
भगवान आत्मा लोगों से भरे हुए जहाज की भाँति अनन्त ज्ञेयों (पदार्थों) से

भरा हुआ है, मिलित है, अशून्य है।

भगवान आत्मा के इस अशून्यस्वभाव को ही अशून्यधर्म कहते हैं और  
इस अशून्यधर्म को विषय बनानेवाले सम्यग्ज्ञान के अंश को अशून्यनय कहते  
हैं। तात्पर्य यह है कि भगवान आत्मा में एक शून्य नामक धर्म है और एक  
अशून्य नामक धर्म है तथा इनके कारण भगवान आत्मा शून्य भी है और  
अशून्य भी है।

शून्य नामक धर्म यह बताता है कि भगवान आत्मा अनन्त ज्ञेयों  
(पदार्थों) को जानकर भी उनसे शून्य (खाली - अमिलित) ही रहता है  
और अशून्य नामक धर्म यह बताता है कि ज्ञेयो (परपदार्थों) का आत्मा  
में अप्रवेश रहकर भी यह भगवान आत्मा ज्ञेयों के ज्ञान से शून्य नहीं  
रहता, अशून्य (भरा हुआ - मिलित) रहता है।

आत्मा के परस्पर विरुद्ध प्रतीत होनेवाले इन धर्मों का ज्ञान कराना ही  
इन दोनों नयों का उद्देश्य है।

आत्मा के शून्य नामक धर्म को विषय बनानेवाले ज्ञान को व कहने वाले  
वचन को शून्यनय कहते हैं और अशून्य नामक धर्म को विषय बनानेवाले  
ज्ञान को व कहनेवाले वचन को अशून्यनय कहते हैं।

इसप्रकार यह स्पष्ट है कि आत्मद्रव्य शून्यनय से सूने घर की भाँति ज्ञेयों से  
शून्य है और अशून्यनय से मनुष्यों से भरे हुए जहाज की भाँति ज्ञेयों से अशून्य  
है ॥22-23 ॥

अहा ! जिसने राग से भिन्न होकर या भेद-विज्ञान करके ज्ञानमय परिणामन  
किया, उसका अन्य वस्तु क्या कर सकती है ? कुछ भी नहीं। बापू ! बाहर में  
तो जो होना होता है वही होता है, उसमें कोई क्या कर सकता है ? देखो, यह  
वस्तु के परिणामन की स्वतंत्रता। प्रतिकूलताओं का ढेर क्यों न हो, फिर भी ज्ञान  
(आत्मा) के ज्ञानत्व को छोड़ने की या छुड़वाने की शक्ति किसी में नहीं है।